Reviews of Literature
Impact Factor : 1.4716 (UIF)
Volume 2 , Issue 2 / Sept 2014 ISSN:-2347-2723

'आंबेडकरी विचारों से प्रभावित-मुक्तिपर्व उपन्यास'

शेख शहेनाज अहेमद[२]

[१]हिंदी विभाग, कै.वसंतराव नाईक महाविद्यालय,वसरणी नांदेड .
[२]हिंदी विभागाध्यक्ष , हुतात्मा जयवंतराव पाटील महाविद्यालय ,हिमायतनगर, ता.हिमायतनगर, जि.नांदेड.

***सारांश* :**

सन २००२ में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय का यह उपन्यास चर्चित और प्रसिध्द उपन्यास है । देश की स्वतंत्रता प्राप्ति को लेखक ने देश की गुलामी का मुक्तिपर्व कहने के साथ इसे दलितों का मुक्तिपर्व बताया है । यह मोहनदास नैमिशराय का पहला उपन्यास है । इसे पढकर ऐसा महसूस होता है कि देश को आजादी लगती है तो दलितों की दृष्टी में यह अधुरी है । यह आजादी सामान्य अर्थ में राजनीतिक आजादीही थी । देश को अंग्रेजी शासन से तो मुक्ति मिली पर आर्थिक शोषण से अभी पूर्णत: मुक्ति नही मिली । आंबेडकर का कहना था कि देश को आजादी मिलने से पहले दलितों को दलितों को आर्थिक-सामाजिक शोषण से मुक्ति मिले । क्योंकि उन्हे यह शंका थी कि अंग्रेजी मुक्ति के बाद देश पर स्वदेशी शासक के रूप में हिंदू शासन होगा, जो दलितों के हित में कभी भी नही सोंचगें वे बराबर-दलितों का शोषण करते रहेंगे ।

***प्रस्तावना* :-**

हम देख रहे है कि, आजादी के पचास साल बाद भी दलितों को सामाजिक-आर्थिक शासन से मुक्ति और न्याय नही मिला तो वे सोंचने के लिए मजबूर हो गए कि यह आजादी आखिर किसके लिए है । हमारा मुक्ति पर्व कब आएगा? यही सवाल आज तक दलितों के मन में उठता रहता है । उनकी भावनाओं को उद्वेगित करता रहता है । लेखक देश के सभ्य नागरिक, राजनीतिक और समाज सुधारकों से सवाल पूछते है- "हम मुक्तिपर्व किसे कहेंगे? देश आजाद हुआ उसे या फिर कुछ जाति या कुछ जातियों को आजादी मिली उसे? मुक्ति से आखिर तात्पर्य क्या है, एक आदमी की मुक्ति या एक विशेष जाती की...?"

देश की आजादी का प्रश्न दलितों की मुक्ति से भी जुडा हुआ था । स्वंतत्रता के लिए अंग्रेजी सेना और क्रांतिकारी आपस में लढ रहे थे । ऐसी स्थिति में गॉव और कस्बाई संस्कृति में मिल-जुल कर रहने वाले दलित असमंजस में थे कि उनके दुश्मन कौन है? किसे मारे? किसे छोडे? उन्हें दोहरी गुलामी

मिली थी । देश के मालिक अंग्रेज थे और दलितों के मालिक नवाब, जमींदार, काश्तकार थे । उन्हें गुलामों की तरह ही रखा जाता था।

उपन्यास की शुरूवात में सामाजिक-सांस्कृतिक माहोल बताया गया है, बंसी हवेली में आते-जाते यह सूनता रहता है कि, देश को आजादी मिलने वाली है, पर मिली नही थी । बंसी हवेली में नौकरी करता है । हवेली में उसे नौकर नही बल्कि गुलाम माना जाता है, क्योंकि उसकी हथेली नवाब का बलगम थुकने के लिए 'उगालदान और पीकदान बन जाती है। उसके ऑख में ऑसू आते है, पर वह उफ तक नही करता। आजादी के उगते सूरज को देखकर गुलामी का अँधेरा दम तोडने लगा। आजादी के उगते सूरज को देख दलितों का खुन उन्हें उत्तेजित कर रहा था। आजादी का यह सुरज नवाब अलीवर्दी खॉ को रास नही आया। क्योंकि अँग्रेजों के जाने से उन्हें गम था। उनका रिश्ता टूट रहा था। वे इस सोंच में थे कि, आजादी के बाद आनेवाले नए कलेक्टर, दरोगा और कमिश्नर कैसे होंगे? इसलिए वे जिस किसी से भी आजादी का नाम सूनते है तो चीढ में वो बंसी के देरी से आने पर उसपर बरस पडते है-"तुम गुलाम थे, गुलाम हो, गुलाम रहोगे।" लेकिन बंसी को गुलामी का एहसास था। आजादी का उजाला पोर-पोर में समा गया था,"जनाबे अली हम न गुलाम थे, न गुलाम है और न गुलाम रहेंगे।" बंसी की यह बात सूनकर नवाब हुक्के की चिलम उठाकर मारने से उसके माथे से खून बहता है। और वह विद्रोह कर उठता है- "हॉ-हॉ, जा रिया हूँ, मै तो थुक्कूँगा भी नही हियॉ पर। यहॉ पर हमें आंबेडकरी विचारधरा का प्रभाव दिखाई देता है। ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योंकि,"बरसों की गुलामी की जंजीरे एक झटके साथ टूट गई थी। न नवाब को इसका गुमान था और न ही बंसी को अहसास था। बाहर निकलते हुए उसके कपडों पर खून के दाग लगे थे। पर सच कहा जाए तो खून के दाग गुलामी के दाग से अच्छे थे। इनका पता तो चल जाता है। गुलामी के दागों का तो पता ही नही चलता । उसे भी कहॉ पता चला था गुलामी के दागों का। बरस-दर-बरस वह तथा उसकी जाति के लोग गुलामी को भोगते आए थे।"

लेखक ने आजादी के सवाल को दलितों की मुक्ति के सवाल से जोडकर उपन्यास की विषयवस्तु को और प्रासंगिक और सार्थक बना दिया है। आजादी के कारण दलित महत्वकांक्षी बन गये है। ऐसी ही आजादी की पहली सुबह बंसी की पत्नी सुंदरी एक बच्चे को जन्म देती है। जो आजाद देश में पैदा हुआ था। आजादी का दिन उनके लिए मुक्तिपर्व से कुछ कम न था। वे मुक्ति का अर्थ समझने लगे थे। अब वे गुंगे नही थे, उनमें चेतना जाग उठी थी। वे अब प्रश्न उत्तर करने लगे उनमें अपनी अस्मिता और पहचान पुन:उमडने लगी थी। बंसी के बेटे के नामकरण संस्कारवाला प्रसंग दलितों की सांस्कृतिक चेतना को उभारता है। पहली बार उनकी बस्ती से पंडित निराश लौटा था। बंसी ने अपने बेटे का नाम 'बुध्द' न रखकर 'सूनीत' रखा और दलित बस्ती को बरसों तक चली आरही धार्मिक वर्चस्व छिन्न-भिन्नकर दिया। साठ साल से चली आई पंडिताई दो कौडी की भी न रही। "धर्म की बिसात उलट गई, इसलिए कि आज एक पंडित खाली हाथ लौट रहा था। उसका कान में बंसी के शब्द गुंज रहे थे-"आज के बाद बस्ती में किसी पंडित की जरूरत नही पडेगी। यहॉ डॉ. अंबेडकर के विचारों का गहरा प्रभाव है जो दलितों को धार्मिक रूढियों-परंपराओ के विरोध में खडा करता है।

सर्वप्रथम दलितों को डॉ.अंबेडकर ने ही गुलामी का अहसास कराया था और उससे मुक्ति का भी रास्ता सुझाया था कि शिक्षा के बिना दलितों की मुक्ति असंभव होगी। रामलाल के प्रयत्नों से बस्ती में स्कूल खूला तो बुढे लोंगो की ऑखो में जैसे रोशनी लौट आयी थी। उनका मन प्रफुल्लित हो रहा था।

वे यह सोंच रहे थे कि हमारी पीढी नही पढी तो क्या हुआ चलो, हमारे बच्चे पढ-लिख जाऍंगे। उन्हें पढने का अवसर नही मिला था। कदम-कदम पर जाति के आधार पर लगाई बंदिशे समाने आती थी। बंसी शिक्षा के महत्व को समझता था और समझता भी था। बंसी गुलामी का इंकार कर देता है। बंसी एक विचारधरा का प्रतिनिधित्व करने लगता है। और निश्चित तौर पर यह अंबेडकरवादी विचारधारा का ही प्रभाव है।

बंसी शिक्षा के महत्व को समझते हुए अपने बेटे सूनीत को स्कूल में प्रवेश दिलाता है। सूनीत भी पढाई में अपना पूरा ध्यान लगाता है। उसमें बचपन से ही विद्रोही भावना पनपते रहती है। वह जहॉं कहीं भी गलत देखता है, वहीं उसमें का विद्रोह जागता है। सामाजिक विषमता के खिलाफ दलितों में विरोध का स्वर व्रीव होने लगा हैं। लेखक अनुभवों से जानता है कि पैदा होने से पहले ही उनके हिस्से में बाप के व्यवसाय का नाम लिख दिया जाता है और 'जाति का नाम तो माथे पर पहले से ही गोंद दिया जाता था।' इसी नाम के कारण सूनीत को कॉलेज में प्रवेश लेते समय अपमानित होना पडा। सूनीत कॉलेज में प्रथम श्रेणी मिली यह देख मास्टरजी को धक्का लगा। उन्हें इसमें आश्चर्य नही बल्कि दु:खद आश्चर्य हुआ था।

प्राय:ही दलितों को सामान्य स्थितियों मे रहने नही दिया जाता है। जाति के नाम पर उन्हें हर कदम पर अपमानित किया जाता है। देश के अध्यापक भी इस मानसिकता से भी अभीतक बाहर निकल नही पाए। सूनीत को भी इसका अनुभव होता है। उसका पूरी क्लास में अपमान किया जाता है। पर सूनीत मौन रहता है। दिनभर उसकी मन:स्थिति अजीब रही। उसके साथ ही उसे सूमित्रा का सूखद अनुभव भी हुआ। मोहनदास नैमिशराय की मुख्य चिंता यही है आजादी के बाद भी क्यों लोग जातियों की बात करते है। एक-दूसरे को छोटा समझते है। जन्म से लेकर बुढापे तक दलितों को इसी स्थिति से गुजरना पडता है। सवर्णो को हर तरह की मुक्ति है। हमारी मुक्ति के सवाल पर सब चुप्पी साध लेते है? हम गुलाम तो नही रहे। इन सवालों को लेखक बार-बार उठाता है। दलितों की आजादी का सवाल उपन्यास के केंद्र में बराबर बना रहता है। और यही सवाल पाठकों भी पूछता है। लेखक ने अंतर्विरोधी स्थितियों द्वारा चरित्रों को नई दिशा दी है। या यूँ भी कह सकते है कि विषम परिस्थितियों में भी वे टुटते नही है बल्कि संघर्षशील रहते है। विषम परिस्थितियों में भी चेतना उन्हें डॉ.अंबेडकर के विचारो से और उनके जीवन दर्शन से मिलती है। सूनीत शिक्षा प्राप्त करके अपने समाज को सम्मान जनक सिथति में पहुँचाना चाहता है, जिस तर अंबेडकर ने सारे दलित समाज का सर उँचा किया था। बंसी को जब यह अहसास हुआ तो उसने गुलामी छोड दी। उसे देख बाकी के दलित भी गुलामी के अहसास को जानते हुए नवाबों की नौकरी छोड रहे थे।

उपन्यास में लेखक ने ब्राम्हाणवादी चेहरा दिखा देता है, "पहले तुम लोगों ने मंदिर भ्रष्ट कर दिए और अब स्कूलों में भी गंदगी फैलाओगे।" भारत आजादी के बाद सरकारी शिक्षण-संस्थानों के अध्यापकों का जातिवादी घिनौना चेहरा है जो आज भी जहॉं-तहॉं दिखाई देता है। दलितों ने शिक्षा प्राप्त करके उपक्रम में हिंदू समाज के इस बहुरूपी चरित्र को उद्घाटित करना शुरू कर दिया है। वर्णव्यवस्थारूपी जातिवाद की परत अब उखडने लगी है। ब्राम्हाणवादी संस्कारों से ग्रस्त अध्यापकों ने षड्यंत्र करके सूनीत किताबों में पढे विचारों-सिध्दांतो और सामाजिक व्यवहार के अनुभव में अंर्तिविरोध पा रहा था कि "उसने कई बार किताबों में पढा था कि अध्यापक देश के निर्माता होते है। क्या ऐसे ही

अध्यापक देश निर्माता होते है? कैसा निर्माण करते है वे देश का? उसके मन के भीतर बार-बार सवाल उठ रहे थे।"

इसलिए उपन्यासकार उन्हीं बिंदुओं पर अपने आपको केंद्रित करता है और विषमतामूलक समाज की एक-एक परत को उधेडता चलता है मोहनदास नैमिशराय समाज के ऐसे अंतर्विरोधी चरित्रों में से प्रगतिशील चरित्रों को पाठकों का सामने लाते है। इस प्रकार वह समाज का एकांगी चित्रण करने से बच जाते है। गांधी और डॉ.अंबेडकर के विवाद के रहस्य पर पर्दा उठाया था कि "गांधी जी कभी भी यह नही चाहते थे कि अंबेडकर यह सिध्द कर पाएँ कि वे ही दलितों के नेता थे।" सवर्ण यह नही चाहते थे कि उनका नेतृत्व कोई दलित करे।

सूनीत शिक्षाक बनकर अपना इतिहास बदलना चाहता है और वर्तमान भी। वह इसी उद्देश्य को लेकर बस्ती के स्कूल में अध्यापक बनकर जाता है तो बस्ती के लोगों को भी बल मिला। पहली बार गुलामी से मिली आजादी को दलितों ने मुक्तिपर्व के रूप में मनाया। इस तरह देश की, आजादी दलितों के लिए मुक्तिपर्व बन गई थी। यह सही है कि मोहनदास नैमिशराय ने देश की आजादी के सवाल को दलितों के मुक्ति के सवाल से जोडकर उपन्यास को प्रासंगिक और सार्थक बनाया है।

उपन्यास का वैचारिक आधार उसे मजबूती प्रदान करता है। लेकिन जब प्रत्येक प्रसंग, घटना और स्थिती पर लेखक अपनी टिप्पणी करने लगता है तो वह अखरने लगती है। ऐसा लगता है कि लेखक अपनी विचारधारा को पाठकों पर आरोपित करने का प्रयत्न करता है। इसलिए उपन्यासकार को विचारों के अतिरिक्त आग्रह से बचना चाहिए। अगर विचार रचना में गुंफित होकर आए तो ज्यादा सार्थक लगते है। बहुत सारी खामियों के बाद भी दलितो के वर्तमान सामाजिक न्याय के आंदोलन को देखते हुए 'मुक्तिपर्व' अपनी सार्थकता स्वयं सिध्द कर देता है, ऐसा मुझे लगता है।

संदर्भ -

१ . मोहनदास नैमिशराय-मुक्तिपर्व पृ.(मेरी बात)
२ . वही पृ.२८
३ . वही पृ.२८
४ . वही पृ.२८
५ . वही वही पृ.
६ . वही पृ.३१
७ . वही पृ.३२
८ . वही पृ.६०
९ . वही पृ.६२
१०. वही वही पृ.